गान्धर्व, नाट्य और संगीत

रूकैय्या
संगीत विभाग
रघुनाथ कन्या महाविद्यालय, मेरठ
Email: rukaiyarashid379@gmail.com

सारांश

भारतीय संगीत को अनादि माना गया है क्योंकि यह वेदों के समान प्राचीन काल से ही प्रयुक्त होता रहा है।

यत्र तन्त्रीकृतं प्रोक्तं नानातोद्यसमाश्रयम।
गान्धर्वमिति विज्ञेय स्वरतालपदाश्रयम।।

(नाट्यशास्त्र)

अर्थात् अनेक वाद्यों का आश्रयभूत जो तन्त्रीगत आतोद्य का प्रकार है, वही स्वर ताल तथा पदों का आश्रय लेने पर गान्धर्व कहलाता है यह गान्धर्व प्रकार देवताओं को अत्यन्त इष्ट तथा प्रिय है और गान्धर्वों के द्वारा प्रयुक्त होने के कारण यह गान्धर्व कहलाता है। शास्त्रों के अनुसार ब्रह्मा ने 'नाट्यवेद' की रचना की, ब्रह्मा जी ने महर्षि भरत को यह ज्ञान दिया जिससे सम्पूर्ण जगत में उसका प्रचार हो सके। 'नाट्य' को 'पंचमवेद' की संज्ञा दी गयी है और गीत को 'नाट्य' की शैया कहा गया है।

नाट्यशास्त्र भारतीय साहित्य एवं संगीत का वृहत कोष है तथा इसमें साहित्य एवं गीत दोनों से सम्बद्ध प्राचीन एवं प्रमाणिक सामग्री संकलित है। रस, छन्द, भाषा, अभिनय, रंगमंच, संगीत, नृत्य इत्यादि में से कोई भी विषय ऐसा नही है। जिसका विवेचन इस ग्रन्थ में न हुआ हो। महर्षि भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में नाट्य तथा गान्धर्व – आधारित संगीत का अत्यन्त विषद वर्णन किया है।

प्रस्तावना

प्राचीन भारत में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय संगीत को अनादि माना गया है। क्योंकि यह वेदों के समान माना गया है। क्योंकि यह वेदों के समान ही प्राचीन काल से प्रयुक्त होता आ रहा है। इसकी उत्पत्ति का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। वैदिक काल से ही वैदिक संगीत के साथ–साथ ही लौकिक संगीत का परिपोषण भी बराबर होता रहा है। वैदिक संगीत अनादि अपौरूषेय, अत्यन्त पवित्र, व्यवस्थित, नियमबद्ध और अपरिवर्तनीय होता था। वेदों

का 'सस्वर पाठ' इसका रूप था। तो यह 'सामगान' कहलाता था। लौकिक संगीत मनुष्य द्वारा निर्मित था। सामगान तथा लौकिक गान दोनों ही जीवन के अभिन्न अंग के रूप में प्रचलित थे। जहाँ सामगान आध्यात्मिक उपलब्धि का माध्यम माना जाता था, वहीं गीत, वाद्य एवं नृत्य से युक्त लौकिक संगीत भौतिक सुख, विलास की उपलब्धि का साधन माना जाता था। यही संगीत 'गान्धर्व' कहलाता था। महर्षि भरत ने नाट्य शास्त्र में गान्धर्व संगीत का अत्यन्त विशद वर्णन किया है।

गान्धर्व शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किए बिना गान्धर्व के प्रयोग के विषय में विचार करना कठिन है अतः इसकी व्युत्पत्ति को समझना आवश्यक है।

'गन्धर्वस्य इदम इति गान्धर्वम'

इस अर्थ में गान्धर्व में 'अण' प्रत्यय लगाकर 'गान्धर्व' शब्द बनता है तथा 'गान्धम अर्वति इति गंधर्वम' इस अर्थ में जो गंध को पहुँचे वह 'गान्धर्व' है अर्थात्– स्वर को गंध से पहचानना। गंधर्वो की श्रवण–शक्ति इतनी सूक्ष्म एवं तीव्र होती है कि वे मूल स्वर के उपस्वरों (Harmonics) को भी पहचान लेते है। इन गन्धर्वों से सम्बन्धित कला ही 'गान्धर्व कला' कहलाती है।

अत्यर्थमिष्टं देवानामित्यनेन गां वाचं धारयतीति
गान्धर्व गान्धर्वाणमिदमितच।।

(अभिनव भारती)

अर्थात्:– आचार्य अभिनवगुप्त ने गान्धर्व शब्द की इन दोनों से भिन्न व्युत्पत्ति बताई है जिसके अनुसार जो वाणी को धारण करे, वह गान्धर्व है।

गान्धर्व के प्रवर्तक के रूप में नारद का उल्लेख मिलता है। लेकिन गान्धर्व वेद के लुप्त हो जाने से इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। 'गान्धर्व' का सबसे पहले उल्लेख भरत के 'नाट्य शास्त्र' में हुआ। नाट्यशास्त्र की टीका में अभिनवगुप्त ने कहा है कि गन्धर्व देवताओं को इष्ट और अत्यन्त प्रिय होने के कारण गान्धर्व कहलाता है। गान्धर्व के तीन विषय होते है– स्वर, ताल और पद। राजाओं की संतानो की शिक्षा का 'गन्धर्व' एक आवश्यक अंग समझा जाता था इसलिए लव, कुश और श्रीराम इत्यादि के सम्बन्ध में इसका उल्लेख हुआ है।

गान्धर्व को वेदों की भाँति सनातन माना जाता है। इसलिए गान्धर्व में कोई परिवर्तन नहीं हुआ उसमें जो गीत है वे 'संगीत रत्नाकर' व वृहदेशी में स्वर पद सहित दिए गए है। उनमें बाद में भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अनादि काल से चले आने वाले गीतों में वेदों की भांति किसी कर्त्ता या काल की छाप नही रहती। ऋषियों द्वारा उनका दर्शन होता है। यह नित्य अभ्युदयकारी होते है।

अत्यन्त प्राचीन काल से नाट्य और गान्धर्व का विकास साथ–साथ होता रहा और दोनों ने वेद के रूप में प्रतिष्ठा भी प्राप्त की। 'गान्धर्ववेद' के लुप्त हो जाने से उसके बारे में तो अधिक जानकारी नहीं मिलती, लेकिन भरत का 'नाट्यशास्त्र' उपलब्ध होने से नाट्य–परम्परा लेखबद्ध रूप में बनी रही। नाट्यशास्त्र भारतीय साहित्य एवं संगीत का वृहत कोष है। तथा इसमें

साहित्य एवं संगीत दोनों से सम्बद्ध प्राचीन एवं प्रमाणिक सामग्री संकलित है। रस, छन्द, भाषा, अभिनय, रंगमंच, संगीत, नृत्य इत्यादि सभी विषयों का विवेचन इस ग्रन्थ में है। भारतीय प्राचीन नाट्यकला के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने वाला यह एक मात्र ग्रन्थ है। नाट्यशास्त्र में नाट्य तथा गान्धर्व दोनों का यथास्थान उत्कृष्ट विवेचन किया गया है। इसके अनुसार नाट्य तीनों लोकों में घटित होने वाली घटनाओं का भावानुकरण है तथा इस कारण नाट्य की रंजकता लोकानुकरण में सन्निहित है। नाट्य अपने वृहत विषय की दृष्टि से सर्वव्यापी है। वेद, इतिहास, आख्यान आदि के आधार पर लौकिक व्यवहार की साभिनय प्रस्तुति ही इसका लक्ष्य है।

'अमरकोष' के अनुसार नाट्य तौर्यत्रिक अर्थात् नृत्य, गीत, वाद्य इन तीनों के सामुहिक प्रयोग के अर्थ में प्रयुक्त होता है। साथ ही ताण्डव, लास्य इत्यादि नृत्य प्रकारों के पर्याय स्वरूप भी इसका प्रयोग होता है।

'नाट्य दृश्य एवं श्रव्य दोनों होने के कारण इसके प्रयोग हेतु गीत, वाद्य तथा नृत्य की ही नहीं अपितु अन्य तत्वों की भी आवश्यकता होती है। इन्ही को दृष्टि में रखते हुए महर्षि भरत ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अर्थवेद से रस को ग्रहण कर उनका यथायोग्य परिमाण में मिश्रण कर अपने पंचम वेद 'नाट्य' भाषा, अभिनय, धर्मो, वृत्ति, प्रवृत्ति, सिद्धि, स्वर अतोद्य, गान एवं रंग–विषयक ज्ञान का संकलन है और इन सभी तत्वों का यथास्थान तथा यथायोग्य परिमाण में प्रयोग ही उसे सफल बनाता है। गान्धर्व या संगीत का प्रयोजन केवल नाट्य की रंजकता में वृद्धि करना मात्र है। न कि स्वतन्त्र प्रयोग।

भरतकालीन नाट्य में गान्धर्वों का अनिवार्य स्थान रहा है। नाट्य की आरम्भिक अवस्था से अन्त तक का प्रयोजन केवल जनरंजन ही नही उसकी कथावस्तु को अग्रसर करना है। नाट्य के अन्तर्गत वाद्यों के प्रयोग में मनोवैज्ञानिक प्रयोजन भी निहित था क्योंकि विशिष्ट भाव तथा रस के अतिरिक्त हेतु तदनुकुल वाद्य–वादन किया जाता था। भरत ने नाट्य के प्रयोग में सुगानत्व, सुवाद्यता तथा सुपाठ्यत्व का समावेश अनिवार्य माना है। क्योकि नाट्य का सम्यक रसास्वादन तभी संभव है। जब प्रेक्षकों की वृत्तियाँ एकाग्र हो और इसके लिए संगीत ही एकमात्र साधन है।

अतः उक्त से तात्पर्य है कि भरत–प्रणीत नाट्य का क्षेत्र गान्धर्व (या संगीत) से पृथक एवं विशाल है। तथा यह विशेषता रूपकाभिनय का द्योतक है। क्योकि इसमें वाक्यार्थ के अभिनय द्वारा रससिद्धि होती है। तथा पात्र अभिनय के कारण इसे 'रूपक' कहते हैं। नाट्य तथा गान्धर्व का क्षेत्र पृथक होने पर भी इन दोनों की सीमाएँ अवश्य मिलती हैं। मतंग और शारंगदेव के काल के बीच में नाट्य से पृथक गीत–वाद्य–नृत्य प्रयोग के लिए 'संगीत' शब्द का प्रयोग आरम्भ हुआ। सम्यक गीत अर्थात् भली प्रकार से गीत प्रयोग। गीत में पद आवश्यक है। यहाँ पद कंठ संगीत का द्योतक है।

संगीत की जो परिभाषा 'संगीत रत्नाकर' व बाद के ग्रन्थों में दी गई है– **गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं संगीत मुच्यते।** संगीत, गीत, वाद्य और नृत्य के समुच्चय की बोधक है। गीत का अनुकरण वाद्य करता था और वाद्य का नृत्य। संगीत रत्नाकर के बाद संगीत में से दृश्याशं यानी नृत्य का महत्व घटने लगा और गीत तथा वाद्य ही संगीत रह गया। लेकिन तब भी इतना

सम्बन्ध बना रहा कि नृत्य वाद्य के बिना नही होता था। गीत व वाद्य का प्रयोग एक दूसरे से स्वतन्त्र होने लगा होगा और यही परम्परा चलती रही। आज भी हम संगीत में केवल गायन, वादन को ही समझते हैं। संगीत की अधिकांश शिक्षा संस्थाओ में भी गानें और बजाने की ही शिक्षा दी tkrh gS blhfy, laxhr dksE;fqd (Music) का पर्याय कहा जाता है।

नाट्य गान्धर्व और संगीत का परस्पर सम्बन्ध एक और रूप में भी जोड़ा जा सकता है। सत, चित, आनन्द की जो धारणा भारतीय दर्शन–शास्त्र में है। उसमें सत की अपेक्षा चित की आनन्द की प्राप्ति होने के कारण इन तीनों में से गान्धर्व को ही प्रमुख माना है। यही गान्धर्व स्वतन्त्र प्रयोग के अतिरिक्त नाट्य में ध्रुवा–गान के रूप में प्रयुक्त होता रहा जिसका बाद में 'संगीत' के रूप में प्रयोग हुआ।

गान्धर्व नाट्य और संगीत के उक्त विवरण से यह समझा जा सकता है कि नाट्य में स्वर, ताल, पद नृत्य, अभिनय सब कुछ है। संगीत में गीत वाद्य, नृत्य के सम्मुच्य होने से दृश्य–श्रव्य है। किन्तु कलाओं के ह्रास होने के परिणाम स्वरूप बाद में जो परिवर्तन आये, उनके प्रभाव से संगीत में से नृत्य तत्व निकल गया और संगीत केवल श्रव्य मात्र रह गया लेकिन नाट्य परम्पराओं का पुनरूद्धार करने से यह फिर से श्रव्य–दृश्य किया जा सकता है। प्राचीन परम्पराओं के उत्थान पर जोर देने व अथक प्रयासो से प्राचीन संगीत व अपनी संस्कृति को फिर से वही गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कराया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, आचार्य भरत, अध्याय–28, श्लोक–8
2. *अभिनवभारती,* गा0ओ0सी0, भाग–4, अध्याय 28, पृं0–**6**
3. संगीत पत्रिका *'संगीत'* लक्ष्मीनारायण गर्ग, वर्ष 36, अंक–2, फरवरी–1973, पृं0– **3, 4, 8, 9**
4. संगीत विशारद– *'वसंत'* 30वाँ संस्करण, अक्टूबर–2017, पृ0–**726**
5. संगीत रत्नावली – अशोक कुमार *'यमन',* संस्करण– 2008, पृ0 **179**